8 ईश्वर से अनुराग

आपने लोगों को पूजा-पाठ करते अथवा भजन, कीर्तन या कव्वाली गाते या चुपचाप ईश्वर के नाम का जाप करते हुए देखा होगा। आपने यह भी गौर किया होगा कि उनमें से कुछ तो इतने भाव-विभोर हो जाते हैं कि उनकी आँखों में आँसू भर आते हैं। ईश्वर के प्रति ऐसा प्रेम-भाव या गहरी भक्ति उन विभिन्न प्रकार के भक्ति तथा सूफ़ी आंदोलनों की देन है, जिनका आठवीं शताब्दी से उद्भव होने लगा।

परमेश्वर का विचार

बड़े-बड़े राज्यों के उदय होने से पहले, भिन्न-भिन्न समूहों के लोग अपने-अपने देवी-देवताओं की पूजा किया करते थे। जब लोग, नगरों के विकास और व्यापार तथा साम्राज्यों के माध्यम से एक साथ आते गए, तब नए-नए विचार विकसित होने लगे। यह बात व्यापक रूप से स्वीकार की जाने लगी कि सभी जीवधारी अच्छे तथा बुरे कर्म करते हुए जीवन-मरण और पुनर्जीवन के अनंत चक्रों से गुज़रते हैं। इसी प्रकार यह विचार भी गहरे बैठ गया था कि सभी व्यक्ति जन्म के समय भी एक बराबर नहीं होते हैं। यह मान्यता कि सामाजिक विशेषाधिकार किसी उच्च परिवार अथवा ऊँची जाति में पैदा होने के कारण मिलते हैं, कई पांडित्यपूर्ण ग्रंथों का विषय था।

अनेक लोग ऐसे विचारों के कारण बेचैन थे। इसलिए वे बुद्ध तथा जैनों के उपदेशों की ओर उन्मुख हुए, जिनके अनुसार व्यक्तिगत प्रयासों से सामाजिक अंतरों को दूर किया जा सकता है और पुनर्जन्म के चक्र से छुटकारा पाया जा सकता है। कुछ अन्य लोग परमेश्वर संबंधी इस विचार से आकर्षित हुए कि यदि मनुष्य भक्तिभाव से परमेश्वर की शरण में जाए, तो परमेश्वर, व्यक्ति को इस बंधन से मुक्त कर सकता है। श्रीमद्भगवद्गीता में व्यक्त यह विचार, सामान्य सन् (ईसवी सन्) की प्रारंभिक शताब्दियों में

लोकप्रिय हो गया था। विशद् धार्मिक अनुष्ठानों के माध्यम से शिव, विष्णु तथा दुर्गा को परम देवी-देवताओं के रूप में पूजा जाने लगा। साथ-साथ, भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में पूजे जाने वाले देवों एवं देवियों को शिव, विष्णु या दुर्गा का रूप माना जाने लगा। इसी प्रक्रिया में स्थानीय मिथक तथा किस्से-कहानियाँ पौराणिक कथाओं के अंग बन गए। पुराणों में पूजा की जिन पद्धतियों की अनुशंसा की गई थी, उन्हें स्थानीय पंथों में भी अपनाया जाने लगा। आगे चलकर पुराणों में भी इस बात का उल्लेख किया गया है कि भक्त भले ही किसी भी जाति-पाँति का हो, वह सच्ची भक्ति से ईश्वर की कृपा प्राप्त कर सकता है। भक्ति की विचारधारा इतनी अधिक लोकप्रिय हो गई कि बौद्धों और जैन मतावलंबियों ने भी इन विश्वासों को अपना लिया।

चित्र 1
भगवद्गीता की किसी दक्षिण भारतीय पांडुलिपि से लिया गया एक पृष्ठ

आज भी आप स्थानीय मिथक तथा किस्से-कहानियों की इस प्रक्रिया को व्यापक स्वीकृति पाते हुए देख सकते हैं। क्या आप अपने आस-पास कुछ ऐसे उदाहरण ढूँढ सकते हैं?

दक्षिण भारत में भक्ति का एक नया प्रकार – नयनार और अलवार

सातवीं से नौवीं शताब्दियों के बीच कुछ नए धार्मिक आंदोलनों का प्रादुर्भाव हुआ। इन आंदोलनों का नेतृत्व नयनारों (शैव संतों) और अलवारों (वैष्णव संतों) ने किया। ये संत सभी जातियों के थे, जिनमें पुलैया और पनार जैसी 'अस्पृश्य' समझी जाने वाली जातियों के लोग भी शामिल थे। वे बौद्धों और जैनों के कटु आलोचक थे और शिव तथा विष्णु के प्रति सच्चे प्रेम को मुक्ति का मार्ग बताते थे। उन्होंने संगम साहित्य (तमिल साहित्य का प्राचीनतम उदाहरण और सामान्य सन् यानी ईसवी सन् की प्रारंभिक शताब्दियों में रचित) में समाहित प्यार और शूरवीरता के आदर्शों को अपना कर भक्ति के मूल्यों में उनका समावेश किया था। नयनार और अलवार घुमक्कड़ साधु-संत थे। वे जिस किसी स्थान या गाँव में जाते थे, वहाँ के स्थानीय देवी-देवताओं की प्रशंसा में सुंदर कविताएँ रचकर उन्हें संगीतबद्ध कर दिया करते थे।

नयनार और अलवार

कुल मिलाकर 63 नयनार ऐसे थे, जो कुम्हार, 'अस्पृश्य' कामगार, किसान, शिकारी, सैनिक, ब्राह्मण और मुखिया जैसी अनेक जातियों में पैदा हुए थे। उनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध थे–अप्पार, संबंदर, सुंदरार और माणिक्कवसागार। उनके गीतों के दो संकलन हैं–*तेवरम्* और *तिरुवाचकम्*।

अलवार संत संख्या में 12 थे। वे भी भिन्न-भिन्न प्रकार की पृष्ठभूमि से आए थे। उनमें से सर्वाधिक प्रसिद्ध थे–पेरियअलवार, उनकी पुत्री अंडाल, तोंडरडिप्पोडी अलवार और नम्मालवार। उनके गीत *दिव्य प्रबंधम्* में संकलित हैं।

धार्मिक जीवनी/संत जीवनी लेखन
संतों की जीवनियाँ लिखना

चित्र 2
माणिक्कवसागार की एक काँस्य प्रतिमा

दसवीं से बारहवीं सदियों के बीच, चोल और पांड्यन राजाओं ने उन अनेक धार्मिक स्थलों पर विशाल मंदिर बनवा दिए, जहाँ की संत-कवियों ने यात्रा की थी। इस प्रकार भक्ति परंपरा और मंदिर पूजा के बीच गहरे संबंध स्थापित हो गए। यही वह समय था, जब उनकी कविताओं का संकलन तैयार किया गया था। इसके अलावा अलवारों तथा नयनार संतों की **धार्मिक जीवनियाँ** भी रची गईं। आज हम भक्ति परंपरा के इतिहास लेखन में इन जीवनियों का स्रोत के रूप में उपयोग करते हैं।

भक्त और भगवान

माणिक्कवसागार की एक रचना :

मेरे हाड-माँस के इस घृणित पुतले में
तुम आए, जैसे यह कोई सोने का मंदिर हो,
मेरे कृपालु प्रभु, मेरे विशुद्धतम रत्न,
तुमने मुझे सांत्वना देकर बचा लिया।
तुमने मेरा दुःख, मेरा जन्म-मृत्यु का कष्ट और माया-मोह
हर लिया और मुझे मुक्त कर दिया।
हे ब्रह्मानंद, हे प्रकाशमय, मैंने तुम में शरण ली है
और मैं तुम से कभी दूर नहीं हो सकता।

कवि ने भगवान के साथ अपने संबंध का कैसा वर्णन किया है?

2020-21

दर्शन और भक्ति

भारत के सर्वाधिक प्रभावशाली दार्शनिकों में से एक शंकर का जन्म आठवीं शताब्दी में केरल प्रदेश में हुआ था। वे अद्वैतवाद के समर्थक थे, जिसके अनुसार जीवात्मा और परमात्मा (जो परम सत्य है), दोनों एक ही हैं। उन्होंने यह शिक्षा दी कि ब्रह्मा, जो एकमात्र या परम सत्य है, वह निर्गुण और निराकार है। शंकर ने हमारे चारों ओर के संसार को मिथ्या या माया माना और संसार का परित्याग करने अर्थात् संन्यास लेने और ब्रह्मा की सही प्रकृति को समझने और मोक्ष प्राप्त करने के लिए ज्ञान के मार्ग को अपनाने का उपदेश दिया।

रामानुज ग्यारहवीं शताब्दी में तमिलनाडु में पैदा हुए थे। वे विष्णुभक्त अलवार संतों से बहुत प्रभावित थे। उनके अनुसार मोक्ष प्राप्त करने का उपाय विष्णु के प्रति अनन्य भक्ति भाव रखना है। भगवान विष्णु की कृपा दृष्टि से भक्त उनके साथ एकाकार होने का परमानंद प्राप्त कर सकता है। रामानुज ने विशिष्टताद्वैत के सिद्धांत को प्रतिपादित किया, जिसके अनुसार आत्मा, परमात्मा से जुड़ने के बाद भी अपनी अलग सत्ता बनाए रखती है। रामानुज के सिद्धांत ने भक्ति की नयी धारा को बहुत प्रेरित किया, जो परवर्ती काल में उत्तरी भारत में विकसित हुई।

?

शंकर या रामानुज के विचारों के बारे में कुछ और पता लगाने का प्रयत्न करें।

बसवन्ना का वीरशैववाद

हमने पहले पढ़ा कि तमिल भक्ति आंदोलन और मंदिर पूजा के बीच क्या संबंध थे। इसके परिणामस्वरूप जो प्रतिक्रिया हुई, वह बसवन्ना और अल्लमा प्रभु और अक्कमहादेवी जैसे उसके साथियों द्वारा प्रारंभ किए गए वीरशैव आंदोलन में स्पष्टत: दिखलाई देती है। यह आंदोलन बारहवीं शताब्दी के मध्य में कर्नाटक में प्रारंभ हुआ था। वीरशैवों ने सभी व्यक्तियों की समानता के पक्ष में और जाति तथा नारी के प्रति व्यवहार के बारे में ब्राह्मणवादी विचारधारा के विरुद्ध अपने प्रबल तर्क प्रस्तुत किए। इसके अलावा वे सभी प्रकार के कर्मकांडों और मूर्तिपूजा के विरोधी थे।

वीरशैवों के वचन

नीचे कुछ *वचन* या कथन दिए गए हैं, जो बसवन्ना के बताए जाते हैं :

धनवान लोग
शिव के लिए मंदिर बनाते हैं।
मैं
एक गरीब आदमी
क्या करूँगा?

मेरी टाँगें खंभे हैं,
शरीर तीर्थ मंदिर है
सिर उसकी छतरी है
सोने की बनी हुई।

ज़रा सुनो, नदी संगम के प्रभु,
खड़ी हुई चीज़ें कभी गिर जाएँगी,
लेकिन चलने वाली सदा चलती रहेंगी।

बसवन्ना, ईश्वर को कौन-सा मंदिर अर्पित कर रहा है?

महाराष्ट्र के ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ और तुकाराम जैसे वैष्णव संत कवि भगवान विट्ठल के उपासक थे। भगवान विट्ठल की आराधना ने वारकारी संप्रदाय को जन्म दिया जो पंढरपुर की वार्षिक तीर्थयात्रा पर जोर देता है। विट्ठल संप्रदाय का भक्ति के शक्तिशाली उपादान के रूप में उदय हुआ तथा लोगों में काफी लोकप्रिय हुआ।

महाराष्ट्र के संत

तेरहवीं से सत्रहवीं शताब्दी तक महाराष्ट्र में अनेकानेक संत कवि हुए, जिनके सरल मराठी भाषा में लिखे गए गीत आज भी जन-मन को प्रेरित करते हैं। उन संतों में सबसे महत्त्वपूर्ण थे—ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ और तुकाराम तथा सखूबाई जैसी स्त्रियाँ तथा चोखामेळा का परिवार, जो 'अस्पृश्य' समझी जाने वाली महार जाति का था। भक्ति की यह क्षेत्रीय परंपरा पंढरपुर में विठ्ठल (विष्णु का एक रूप) पर और जन-मन के हृदय में विराजमान व्यक्तिगत देव (ईश्वर) संबंधी विचारों पर केंद्रित थी।

इन संत-कवियों ने सभी प्रकार के कर्मकांडों, पवित्रता के ढोंगों और जन्म पर आधारित सामाजिक अंतरों का विरोध किया। यहाँ तक कि उन्होंने संन्यास के विचार को भी ठुकरा दिया और किसी भी अन्य व्यक्ति की तरह रोज़ी-रोटी कमाते हुए परिवार के साथ रहने और विनम्रतापूर्वक ज़रूरतमंद साथी व्यक्तियों की सेवा करते हुए जीवन बिताने को अधिक पसंद किया। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि असली भक्ति दूसरों के दु:खों को बाँट

2020-21

लेना है। इससे एक नए मानवतावादी विचार का उद्‌भव हुआ। जैसा कि सुप्रसिद्ध गुजराती संत नरसी मेहता ने कहा था–"वैष्णव जन तो तेने कहिए पीर पराई जाने रे।"

सामाजिक व्यवस्था पर प्रश्न चिह्न

यह संत तुकाराम का एक 'अभंग' (मराठी भक्तिगीत) है:

जो दीन-दुखियों, पीड़ितों को
अपना समझता है
वही संत है
क्योंकि ईश्वर उसके साथ है।

वह हर एक परित्यक्त व्यक्ति को
अपने दिल से लगाए रखता है
वह एक दास के साथ भी
अपने पुत्र जैसा व्यवहार करता है।

तुकाराम का कहना है
मैं यह कहते-कहते
कभी नहीं थकूँगा
ऐसा व्यक्ति
स्वयं ईश्वर है।

यहाँ चोखामेळा के पुत्र द्वारा रचित एक *अभंग* दिया जा रहा है:

तुमने हमें नीची जाति का बनाया
मेरे महाप्रभु, तुम स्वयं यह स्थिति स्वीकार करके तो देखो
हमें जीवनभर जूठन खानी पड़ती है
इसके लिए मेरे प्रभु तुम्हें शर्म आनी चाहिए।

तुम तो हमारे घर में खा चुके हो
तुम इससे कैसे इंकार कर सकते हो?
चोखा का (बेटा) करमामेला पूछता है
तुमने मुझे ज़िंदगी क्यों दी?

? *इन रचनाओं में अभिव्यक्त सामाजिक व्यवस्था के विचारों के बारे में चर्चा करें।*

नाथपंथी, सिद्ध और योगी
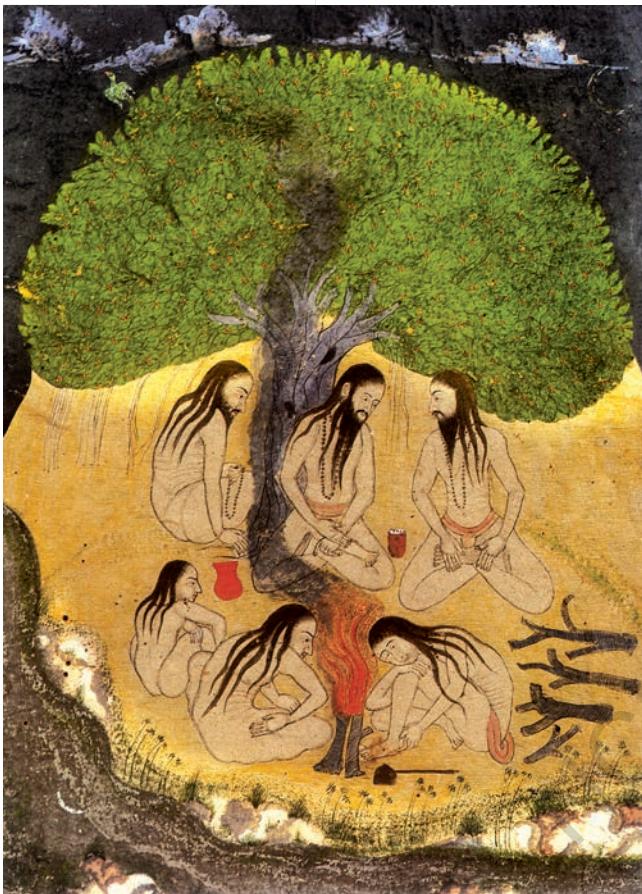
चित्र 3
आग के आस-पास तपस्वियों का समूह

इस काल में अनेक ऐसे धार्मिक समूह उभरे, जिन्होंने साधारण तर्क-वितर्क का सहारा लेकर रूढ़िवादी धर्म के कर्मकांडों और अन्य बनावटी पहलुओं तथा समाज-व्यवस्था की आलोचना की। उनमें नाथपंथी, सिद्धाचार और योगी जन उल्लेखनीय हैं। उन्होंने संसार का परित्याग करने का समर्थन किया। उनके विचार से निराकार परम सत्य का चिंतन-मनन और उसके साथ एक हो जाने की अनुभूति ही मोक्ष का मार्ग है। इसके लिए उन्होंने योगासन, प्राणायाम और चिंतन-मनन जैसी क्रियाओं के माध्यम से मन एवं शरीर को कठोर प्रशिक्षण देने की आवश्यकता पर बल दिया। ये समूह खासतौर पर 'नीची' कही जाने वाली जातियों में बहुत लोकप्रिय हुए। उनके द्वारा की गई रूढ़िवादी धर्म की आलोचना ने भक्तिमार्गीय धर्म के लिए आधार तैयार किया, जो आगे चलकर उत्तरी भारत में लोकप्रिय शक्ति बना।

इस्लाम और सूफ़ी मत

संतों और सूफ़ियों में बहुत अधिक समानता थी, यहाँ तक कि यह भी माना जाता है कि उन्होंने आपस में कई विचारों का आदान-प्रदान किया और उन्हें अपनाया। सूफ़ी मुसलमान रहस्यवादी थे। वे धर्म के बाहरी आडंबरों को अस्वीकार करते हुए ईश्वर के प्रति प्रेम और भक्ति तथा सभी मनुष्यों के प्रति दयाभाव रखने पर बल देते थे।

इस्लाम ने एकेश्वरवाद यानी एक अल्लाह के प्रति पूर्ण समर्पण का दृढ़ता से प्रचार किया। आठवीं और नवीं शताब्दी में धार्मिक विद्वानों ने पवित्र कानून (शरिया) और इस्लामिक धर्मशास्त्र के विभिन्न पहलुओं को विकसित किया। ईसलाम धीरे-धीरे और जटिल होता गया जबकि सूफ़ियों ने एक अलग रास्ता दिखाया जो ईश्वर के प्रति व्यक्तिगत समर्पण पर बल दिया। सूफ़ी लोगों ने मुसलिम धार्मिक विद्वानों द्वारा निर्धारित विशद् कर्मकांड और आचार-संहिता को बहुत कुछ अस्वीकार कर दिया। वे ईश्वर के साथ ठीक उसी प्रकार जुड़े रहना चाहते थे, जिस प्रकार एक प्रेमी, दुनिया की परवाह

किए बिना अपनी प्रियतमा के साथ जुड़े रहना चाहता है। संत-कवियों की तरह सूफ़ी लोग भी अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए काव्य रचना किया करते थे। गद्य में एक विस्तृत साहित्य तथा कई किस्से-कहानियाँ इन सूफ़ी संतों के इर्द-गिर्द विकसित हुईं। मध्य एशिया के महान सूफ़ी संतों में गज़्ज़ाली, रूमी और सादी के नाम उल्लेखनीय हैं। नाथपंथियों, सिद्धों और योगियों की तरह, सूफ़ी भी यही मानते थे कि दुनिया के प्रति अलग नज़रिया अपनाने के लिए दिल को सिखाया-पढ़ाया जा सकता है। उन्होंने किसी औलिया या पीर की देख-रेख में *ज़िक्र* (नाम का जाप), चिंतन, *समा* (गाना), *रक्स* (नृत्य), नीति-चर्चा, साँस पर नियंत्रण आदि के ज़रिए प्रशिक्षण की विस्तृत रीतियों का विकास किया। इस प्रकार आध्यात्मिक सूफ़ी उस्तादों की पीढ़ियों, सिलसिलाओं का प्रादुर्भाव हुआ। इनमें से हरेक सिलसिला निर्देशों व धार्मिक क्रियाओं का थोड़ा-बहुत अलग तरीका अपनाती थी।

चित्र 4
आनंदित सूफ़ी

कश्मीर में 15वीं एवं 16वीं सदियों में सूफीवाद के ऋषि पंथ का उदय हुआ। इस पंथ की स्थापना शेख नुरुद्दीन वली, जिन्हें नन्द ऋषि के नाम से भी जाना जाता है, ने की और जिसने कश्मीर के लोगों के जीवन पर गहरा प्रभाव डाला है। ऋषि संतों को समर्पित कई स्मारक कश्मीर के कई भागों में पाए जाते हैं।

चित्र 5
कुरान की पांडुलिपि से लिया गया एक पृष्ठ, दक्कन, परवर्ती पंद्रहवीं शताब्दी

ग्यारहवीं शताब्दी से अनेक सूफ़ी जन मध्य एशिया से आकर हिंदुस्तान में बसने लगे थे। दिल्ली सल्तनत (अध्याय 3) की स्थापना के साथ यह प्रक्रिया उस समय और भी मज़बूत हो गई, जब उपमहाद्वीप में सर्वत्र बड़े-बड़े अनेक सूफ़ी केंद्र विकसित हो गए। चिश्ती सिलसिला इन सभी सिलसिलों में सबसे अधिक प्रभावशाली था। इसमें औलियाओं की एक लंबी परंपरा थी, जैसे—अजमेर के ख़्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती, दिल्ली के क़ुत्बउद्दीन बख्तियार काकी, पंजाब के बाबा फ़रीद, दिल्ली के ख़्वाजा निज़ामुद्दीन औलिया और गुलबर्ग के बंदानवाज़ गिसुदराज़।

ख़ानक़ाह
सूफ़ी संस्था जहाँ सूफ़ी संत अकसर रहते भी हैं।

सूफ़ी संत अपने *ख़ानक़ाहों* में विशेष बैठकों का आयोजन करते थे जहाँ सभी प्रकार के भक्तगण, जिनमें शाही घरानों के लोग तथा अभिजात और आम लोग भी शामिल होते थे। इन ख़ानक़ाहों में आते थे। वे आध्यात्मिक विषयों पर चर्चा करते थे। अपनी दुनियादारी की समस्याओं को सुलझाने के लिए संतों से आशीर्वाद माँगते थे अथवा संगीत तथा नृत्य के जलसों में ही शामिल होकर चले जाते थे।

अकसर लोग यह समझते थे कि सूफ़ी औलियाओं के पास चमत्कारिक शक्तियाँ होती हैं, जिनसे आम लोगों को बीमारियों और तकलीफ़ों से छुटकारा मिल सकता है। सूफ़ी संत की दरगाह एक तीर्थस्थल बन जाता था, जहाँ सभी ईमान-धर्म के लोग हज़ारों की संख्या में इकट्ठे होते थे।

चित्र 6
सभी पृष्ठभूमियों के भक्त, सूफ़ी दरगाहों पर जाते हैं।

मालिक (प्रभु) की खोज

जलालुद्दीन रूमी तेरहवीं सदी का महान सूफ़ी शायर था। वह ईरान का रहने वाला था और उसने फ़ारसी में काव्य रचना की। उसकी कृति का एक उद्धरण प्रस्तुत है:

वह ईसाइयों की सूली पर नहीं था। मैं हिंदू मंदिरों में गया। वहाँ भी उसका कोई नामोनिशान नहीं था। न तो वह ऊँचाइयों में मिला न ही खाइयों में... मैं मक्का के क़ाबा भी गया। वह वहाँ नहीं था। मैंने उसके बारे में दार्शनिक एविसेन्ना से पूछा। वह एविसेन्ना की पहुँच से परे था... मैंने अपने दिल में झाँका। यही उसकी जगह थी। वहीं मैंने उसे पाया। वह और कहीं नहीं था।

उत्तर भारत में धार्मिक बदलाव

तेरहवीं सदी के बाद उत्तरी भारत में भक्ति आंदोलन की एक नयी लहर आई। यह एक ऐसा युग था, जब इस्लाम, ब्राह्मणवादी हिंदू धर्म, सूफ़ीमत, भक्ति की विभिन्न धाराओं ने और नाथपंथियों, सिद्धों तथा योगियों ने परस्पर एक-दूसरे को प्रभावित किया। हमने देखा कि नए नगरों (अध्याय 6) और राज्यों (अध्याय 2, 3 और 4) का उद्‌भव हो रहा था और लोग अपने लिए नए-नए व्यवसाय और नयी-नयी भूमिकाएँ खोज रहे थे। ऐसे लोग विशेष रूप से शिल्पी, कृषक, व्यापारी और मज़दूर, इन नए संतों के विचारों को सुनने के लिए इकट्ठे हो जाते थे। फिर वे उनका प्रचार करते थे।

उनमें से कबीर और बाबा गुरु नानक जैसे कुछ संतों ने सभी आडंबरपूर्ण रूढ़िवादी धर्मों को अस्वीकार कर दिया। तुलसीदास और सूरदास जैसे कुछ अन्य संतों ने उस समय विद्यमान विश्वासों तथा पद्धतियों को स्वीकार करते हुए उन्हें सब की पहुँच में लाने का प्रयत्न किया। तुलसीदास ने ईश्वर को राम के रूप में धारण किया। अवधी (पूर्वी उत्तर प्रदेश की बोली) में लिखी गई तुलसीदास की रचना *रामचरितमानस* उनके भक्ति-भाव की अभिव्यक्ति और साहित्यिक कृति, दोनों ही दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। सूरदास श्री कृष्ण के अनन्य भक्त थे। उनकी रचनाएँ *सूरसागर,*

चित्र 7
चैतन्यदेव, सोलहवीं शताब्दी के बंगाल के एक भक्ति संत। इन्होंने कृष्ण-राधा के प्रति निष्काम भक्ति-भाव का उपदेश दिया। इस चित्र में आप उनके अनुयायियों के एक समूह को आनंद में नाचते-गाते हुए देख सकते हैं।

मानचित्र 1
मुख्य भक्ति संत तथा उनसे जुड़े क्षेत्र

शंकरदेव की भक्ति का सार– "एक शरण नाम धर्म" (एक सर्वोच्च सत्ता के प्रति समर्पण) के नाम से जाना गया। शंकरदेव की शिक्षाएं भगवदगीता तथा भागवत पुराण पर आधारित हैं। उन्होंने ज्ञान के प्रसार के लिए सत्र या मठों की स्थापना को प्रोत्साहित किया। उनकी प्रमुख रचना में कीर्तनघोष शामिल हैं।

सूरसारावली और *साहित्य लहरी* में संग्रहित हैं एवं उनके भक्ति भाव को अभिव्यक्त करती हैं। असम के शंकरदेव (परवर्ती 15वीं शताब्दी) जो इन्हीं के समकालीन थे, ने विष्णु की भक्ति पर बल दिया और असमिया भाषा में कविताएँ तथा नाटक लिखे। उन्होंने ही 'नामघर' (कविता पाठ और प्रार्थना गृह) स्थापित करने की पद्धति चलाई, जो आज तक चल रही है।

इस परंपरा में दादू दयाल, रविदास और मीराबाई जैसे संत भी शामिल थे। मीराबाई एक राजपूत राजकुमारी थीं, जिनका विवाह सोलहवीं शताब्दी में मेवाड़ के एक राजसी घराने में हुआ था। मीराबाई, रविदास, जो 'अस्पृश्य' जाति के माने जाते थे, की अनुयायी बन गईं। वे कृष्ण के प्रति समर्पित थीं और उन्होंने अपने गहरे भक्ति-भाव को कई भजनों में अभिव्यक्त किया है।

उनके गीतों ने 'उच्च' जातियों के रीतियों-नियमों को खुली चुनौती दी तथा ये गीत राजस्थान व गुजरात के जनसाधारण में बहुत लोकप्रिय हुए।

इन संतों में से अधिकाँश का विशिष्ट अभिलक्षण यह है कि इनकी कृतियाँ क्षेत्रीय भाषाओं में रची गईं और इन्हें आसानी से गाया जा सकता था। इसीलिए ये बेहद लोकप्रिय हुईं और पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक रूप से चलती रहीं। प्राय: इन गीतों के प्रसारण में सर्वाधिक निर्धन, सर्वाधिक वंचित समुदाय और महिलाओं की भूमिका रही है। प्रसारण की इस प्रक्रिया में ये सभी लोग अकसर अपने अनुभव भी जोड़ देते थे। इस तरह आज मिलने वाले गीत, संतों की रचनाएँ तो हैं हीं, साथ-साथ उन पीढ़ियों के लोगों की रचनाएँ मानी जा सकती हैं, जो उन्हें गाया करते थे। वे हमारी जीती-जागती जन संस्कृति का अंग बन गई हैं।

भक्ति संतों का एक महत्वपूर्ण योगदान संगीत के विकास में था। बंगाल के जयदेव ने संस्कृत में गीत गोविन्द की रचना की, जिसमें हर गीत एक विशेष राग और ताल में रचित है। संगीत पर इन संतों का एक महत्वपूर्ण प्रभाव-भजन, कीर्तन और अंभग का प्रयोग था। इन गीतों ने, जो मनोभावनात्मक अनुभवों पर बल देतें हैं, जनमानस को ज्यादा आकर्षित किया।

राणा के राजमहल से परे

मीरा द्वारा रचा गया गीत :

लोक लाज कुलराँ मरजादाँ जग माँ जेक णा राख्याँ री
महल अटारी हम सब त्यागे
त्याग्यो थाँरो बसनों सहर
राणाजी थे क्याँने राखो म्हाँसू बैर
बिख रो प्यालो राणाँ भेज्या,
पीवाँ मीरा हाँसा री
बार न बाँको भयो गरल अमृत ज्यों पीयो
राणा थे क्याँने राखो महाँसू बैर

? आपके विचार से मीरा ने राणा का राजमहल क्यों छोड़ा?

चित्र 8
मीराबाई

कबीर – नज़दीक से एक नज़र

कबीर संभवत: पंद्रहवीं-सोलहवीं सदी में हुए थे। वे एक अत्यधिक प्रभावशाली संत थे। उनका पालन-पोषण बनारस में या उसके आस-पास के एक मुसलमान जुलाहा यानी बुनकर परिवार में हुआ था। उनके जीवन के बारे में हमारे पास बहुत कम विश्वसनीय जानकारी है। हमें उनके विचारों की जानकारी उनकी साखियों और पदों के विशाल संग्रह से मिलती है, जिनके बारे में यह कहा जाता है कि इनकी रचना तो कबीर ने की थी परंतु ये घुमंतू भजन-गायकों द्वारा गाए जाते थे। इनमें से कुछ भजन *गुरु ग्रंथ साहब*, *पंचवाणी* और *बीजक* में संग्रहित एवं सुरक्षित हैं।

सच्चे प्रभु की खोज में

कबीर की एक रचना :
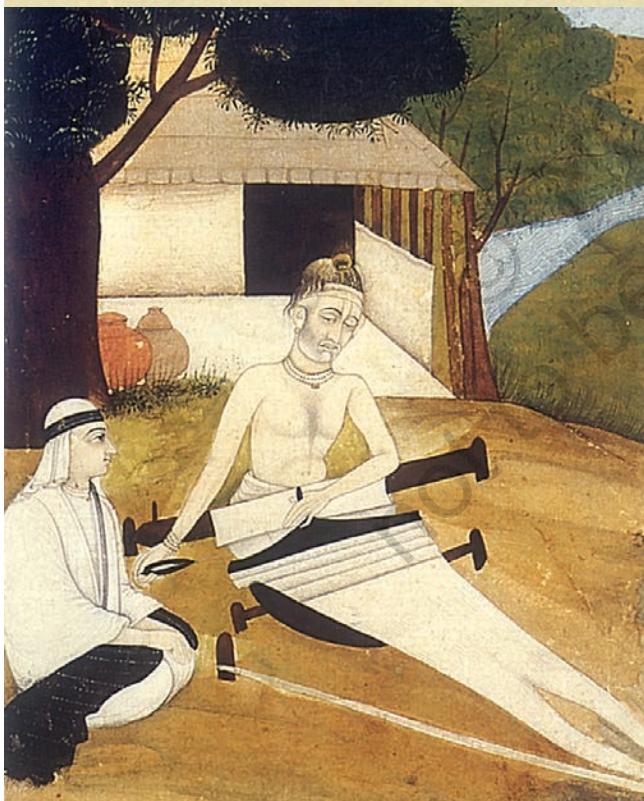
अलह राम जीऊँ तेरे नाँइ,
बंदे ऊपरि मिहर करो मेरे साँई।
क्या ले माटी भुँइ सूँ,
मारैं क्या जल देह न्हवाये।
जो करें मसकीन सतावे,
गून ही रहै छिपायें।।
ब्राह्मण व्यारसि करै चौबीसौं,
काजी महरम जाँन।
ग्यारस मास जुदे क्यू कीये,
एकहि माहि समान।।
पूरबि दिसा हरी का बासा,
पछिम अलह मुकामा।
दिल ही खोजि दिलै भीतरि,
इहाँ राम रहिमानाँ।।

चित्र 9
करघे पर काम करते हुए कबीर

? *इन दोहों में दिए गए विचार किस रूप में बसवन्ना और जलालुद्दीन रूमी के विचारों से समानता या भिन्नता रखते हैं?*

कबीर के उपदेश प्रमुख धार्मिक परंपराओं की पूर्ण एवं प्रचंड अस्वीकृति पर आधारित थे। उनके उपदेशों में ब्राह्मणवादी हिंदू धर्म और इस्लाम दोनों की बाह्य आंडबरपूर्ण पूजा के सभी रूपों का मज़ाक उड़ाया गया है। उनके काव्य की भाषा बोलचाल की हिंदी थी, जो आम आदमियों द्वारा आसानी से समझी जा सकती थी। उन्होंने कभी-कभी रहस्यमयी भाषा का भी प्रयोग किया, जिसे समझना कठिन होता है।

कबीर, निराकार परमेश्वर में विश्वास रखते थे। उन्होंने यह उपदेश दिया कि भक्ति के माध्यम से ही मोक्ष यानी मुक्ति प्राप्त हो सकती है। हिंदू तथा मुसलमान दोनों लोग उनके अनुयायी हो गए।

बाबा गुरु नानक – नज़दीक से एक नज़र

कबीर की अपेक्षा बाबा गुरु नानक (1469-1539) के बारे में हम कहीं अधिक जानते हैं। तलवंडी (पाकिस्तान में ननकाना साहब) में जन्म लेने वाले बाबा गुरु नानक ने करतारपुर (रावी नदी के तट पर डेरा बाबा नानक) में एक केंद्र स्थापित करने से पहले कई यात्राएँ की। उन्होंने अपने अनुयायियों के लिए करतारपुर में एक नियमित उपासना पद्धति अपनाई, जिसके अंतर्गत उन्हीं के शबदों (भजनों) को गाया जाता था। उनके अनुयायी अपने-अपने पहले धर्म या जाति अथवा लिंग-भेद को नज़रअंदाज़ करके एक सांझी रसोई में इकट्ठे खाते-पीते थे। इसे 'लंगर' कहा जाता था। बाबा गुरु नानक ने उपासना और धार्मिक कार्यों के लिए जो जगह नियुक्त की थी, उसे 'धर्मसाल' कहा गया। आज इसे गुरुद्वारा कहते हैं।

चित्र 10
धार्मिक महानुभावों से चर्चा करते बाबा गुरु नानक, जब वे युवक थे।

1539 में अपनी मृत्यु के पूर्व बाबा गुरु नानक ने एक अनुयायी को अपना उत्तराधिकारी चुना। इनका नाम लहणा था, लेकिन ये गुरु अंगद के नाम से जाने गए। 'गुरु अंगद' नाम का महत्त्व यह था कि गुरु अंगद, बाबा गुरु नानक के ही अंग माने गए। गुरु अंगद ने बाबा गुरु
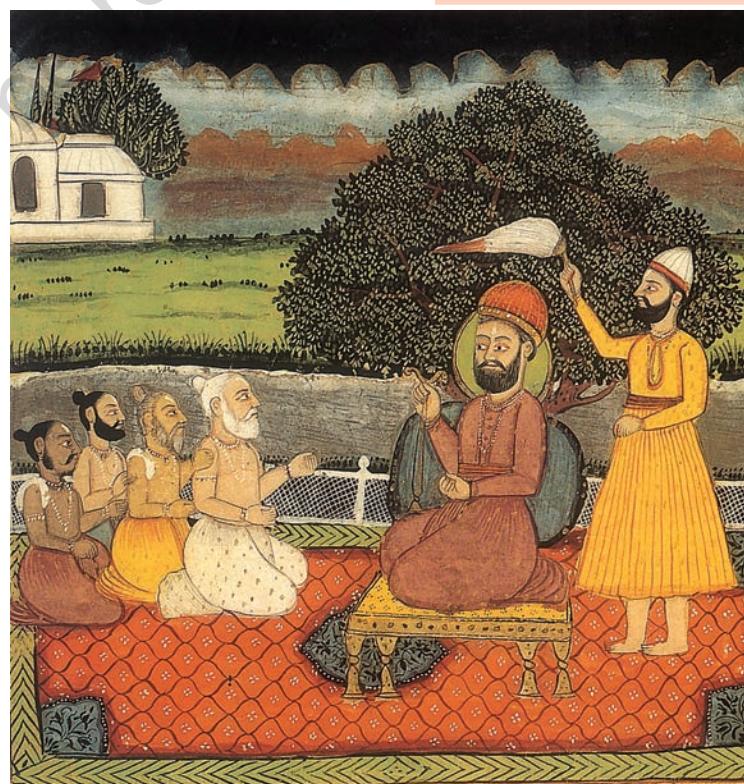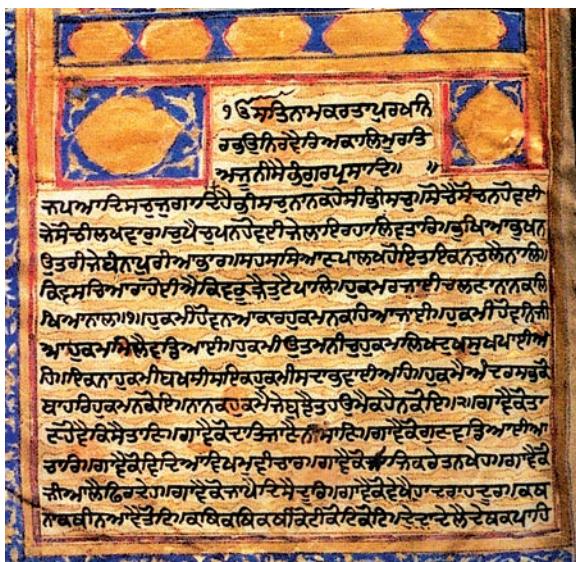
चित्र 11
गुरु ग्रंथ साहब की एक आरंभिक पांडुलिपि

नानक की रचनाओं का संग्रह किया और उस संग्रह में अपनी कृतियाँ भी जोड़ दीं। संग्रह एक नई लिपि गुरमुखी में लिखा गया था। गुरु अंगद के तीन उत्तराधिकारियों ने भी अपनी रचनाएँ 'नानक' के नाम से लिखीं। इन सभी का संग्रह गुरु अर्जन ने 1604 में किया। इस संग्रह में शेख फरीद, संत कबीर, भगत नामदेव और गुरु तेग़बहादुर जैसे सूफ़ियों, संतों और गुरुओं की वाणी जोड़ी गई। 1706 में इस वृहत् संग्रह को गुरु तेगबहादुर के पुत्र व उत्तराधिकारी गुरु गोबिंद सिंह ने प्रमाणित किया। आज इस संग्रह को सिक्खों के पवित्र ग्रंथ *गुरु ग्रंथ साहब* के रूप में जाना जाता है।

सोलहवीं शताब्दी में बाबा गुरु नानक के उत्तराधिकारियों के नेतृत्व में उनके अनुयायियों की संख्या का विस्तार हुआ। ये अनुयायी कई जातियों के थे, परंतु इनमें व्यापारी, कृषक और शिल्पकार ज़्यादा थे। इसकी वजह यह हो सकती है कि बाबा गुरु नानक इस बात पर बल दिया करते थे कि उनके अनुयायी गृहस्थ हों और उपयोगी व उत्पादक पेशों से जुड़े हों। अनुयायियों से यह आशा भी की जाती थी कि वे नए समुदाय के सामान्य कोष में योगदान देंगे।

सत्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ से केंद्रीय गुरुद्वारा हरमंदर साहब (स्वर्ण मंदिर) के आस-पास रामदासपुर शहर (अमृतसर) विकसित होने लगा था। प्रशासन में यह वस्तुतः स्वायत्त था। आधुनिक इतिहासकार इस युग के सिक्ख समुदाय को 'राज्य के अंतर्गत राज्य' मानते हैं। मुग़ल सम्राट जहाँगीर इस समुदाय को एक संभावित खतरा मानता था। उसने 1606 में गुरु अर्जन को मृत्युदण्ड देने का आदेश दिया। सत्रहवीं शताब्दी में सिक्ख आंदोलन का राजनीतिकरण शुरू हो गया, जिसका दूरगामी परिणाम यह हुआ कि 1699 में गुरु गोबिंद सिंह ने खालसा की संस्था का निर्माण किया। 'खालसा पंथ' के नाम से जाना जाने वाला सिक्ख समुदाय अब एक राजनैतिक सत्ता बन गया।

सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों की बदलती हुई ऐतिहासिक परिस्थितियों ने सिक्ख आंदोलन के विकास को प्रभावित किया। शुरू से ही बाबा गुरु नानक के विचारों का सिक्ख आंदोलन पर गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने एक ईश्वर की उपासना के महत्त्व पर ज़ोर दिया। उन्होंने आग्रह किया कि जाति, धर्म अथवा लिंग-भेद, मुक्ति प्राप्ति के लिए कोई मायने नहीं रखते हैं।

उनके लिए मुक्ति किसी निष्क्रिय आनंद की स्थिति नहीं थी, बल्कि सक्रिय जीवन व्यतीत करने के साथ-साथ सामाजिक प्रतिबद्धता की निरंतर कोशिशों में ही निहित थी। अपने उपदेश के सार को व्यक्त करने के लिए उन्होंने तीन शब्दों का प्रयोग किया : *नाम, दान* और *इस्नान* (स्नान)। नाम से उनका तात्पर्य, सही उपासना से था। दान का तात्पर्य था, दूसरों का भला करना और इस्नान का तात्पर्य आचार-विचार की पवित्रता। आज उनके उपदेशों को *नाम-जपना, किर्त-करना* और *वंड-छकना* के रूप में याद किया जाता है। ये अवधारणाएँ भी उचित विश्वास और उपासना, ईमानदारीपूर्ण निर्वाह और संसाधनों को मिल-बाँटकर प्रयोग करना यानी कि दूसरों की मदद के महत्त्व को रेखांकित करती हैं। इस तरह बाबा गुरु नानक के समानता के विचारों के सामाजिक-राजनीतिक मायने थे। शायद इसी बात से हमें बाबा गुरु नानक और उनके अनुयायियों के इतिहास और कबीर, रविदास एवं दादू जैसे संतों और उनके अनुयायियों (जिनके विचार बाबा गुरु नानक के विचारों के काफ़ी करीब थे) के इतिहास में फ़र्क को समझने में मदद मिलती है।

अन्यत्र

मार्टिन लूथर और धर्मसुधार आंदोलन

सोलहवीं सदी का समय यूरोप में भी एक धार्मिक अंत:क्षोभ यानी उथल-पुथल का काल था, तब ईसाई धर्म में अनेक परिवर्तन हुए, जिन्हें लाने वाले महत्त्वपूर्ण नेताओं में से एक थे–मार्टिन लूथर (1483-1546)। लूथर ने यह महसूस किया कि रोमन कैथोलिक चर्च के अनेक आचार-व्यवहार बाइबिल की शिक्षाओं के विरुद्ध जाते हैं। लूथर ने लैटिन भाषा की बजाय आम लोगों की भाषा के प्रयोग को प्रोत्साहन दिया और बाइबिल का जर्मन भाषा में अनुवाद किया। वे दंडमोचन की उस प्रथा के घोर विरोधी थे, जिसके अंतर्गत पापकर्मों को क्षमा कराने के लिए चर्च को दान दिया जाता था। छापेखाने के बढ़ते हुए प्रयोग से उनकी रचनाओं का व्यापक रूप से प्रचार-प्रसार हुआ। अनेक प्रोटेस्टैंट ईसाई संप्रदाय अपना उद्भव लूथर की शिक्षाओं में ही खोजते हैं।
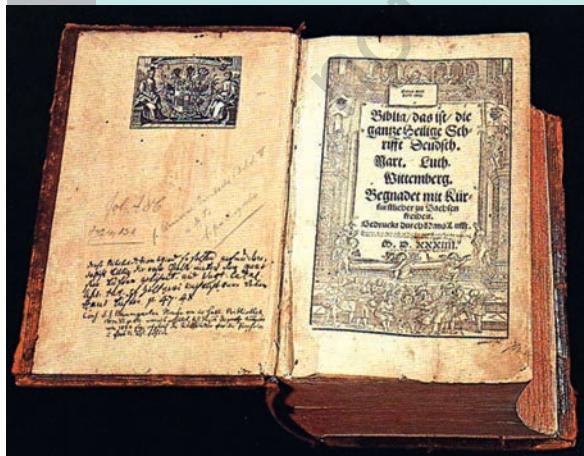
चित्र 12
मार्टिन लूथर द्वारा जर्मन भाषा में अनुवादित बाइबिल का शीर्षक पृष्ठ

कल्पना करें

आप एक बैठक में भाग ले रहे हैं, जहाँ एक संत जाति-व्यवस्था पर चर्चा कर रहे हैं। इस बातचीत का वर्णन करें।

फिर से याद करें

1. निम्नलिखित में मेल बैठाएँ :

बुद्ध	नामघर
शंकरदेव	विष्णु की पूजा
निज़ामुद्दीन औलिया	सामाजिक अंतरों पर सवाल उठाए
नयनार	सूफ़ी संत
अलवार	शिव की पूजा

2. रिक्त स्थान की पूर्ति करें :

(क) शंकर ―――――― के समर्थक थे।

(ख) रामानुज ―――――― के द्वारा प्रभावित हुए थे।

(ग) ――――――, ―――――― और ―――――― वीरशैव मत के समर्थक थे।

(घ) ―――――― महाराष्ट्र में भक्ति परंपरा का एक महत्त्वपूर्ण केंद्र था।

3. नाथपंथियों, सिद्धों और योगियों के विश्वासों और आचार-व्यवहारों का वर्णन करें।

4. कबीर द्वारा अभिव्यक्त प्रमुख विचार क्या-क्या थे? उन्होंने इन विचारों को कैसे अभिव्यक्त किया?

बीज शब्द

वीरशैव मत

भक्ति

सूफ़ी

ख़ानक़ाह

आइए समझें

5. सूफ़ियों के प्रमुख आचार-व्यवहार क्या थे?

6. आपके विचार से बहुत-से गुरुओं ने उस समय प्रचलित धार्मिक विश्वासों तथा प्रथाओं को अस्वीकार क्यों किया?

7. बाबा गुरु नानक की प्रमुख शिक्षाएँ क्या थीं?

आइए विचार करें

8. जाति के प्रति वीरशैवों अथवा महाराष्ट्र के संतों का दृष्टिकोण कैसा था? चर्चा करें।

9. आपके विचार से जनसाधारण ने मीरा की याद को क्यों सुरक्षित रखा?

आइए करके देखें

10. पता लगाएँ कि क्या आपके आस-पास भक्ति परंपरा के संतों से जुड़ी हुई कोई दरगाह, गुरुद्वारा या मंदिर है। इनमें से किसी एक को देखने जाइए और बताइए कि वहाँ आपने क्या देखा और सुना।

11. इस अध्याय में अनेक संत कवियों की रचनाओं के उद्धरण दिए गए हैं। उनकी कृतियों के बारे में और अधिक जानकारी प्राप्त करें और उनकी उन कविताओं को नोट करें, जो यहाँ नहीं दी गई हैं। पता लगाएँ कि क्या ये गाई जाती हैं। यदि हाँ, तो कैसे गाई जाती हैं और कवियों ने इनमें किन विषयों पर लिखा था।

12. इस अध्याय में अनेक संत-कवियों के नामों का उल्लेख किया गया है, परंतु कुछ की रचनाओं को इस अध्याय में शामिल नहीं किया गया है। उस भाषा के बारे में कुछ और जानकारी प्राप्त करें, जिसमें ऐसे कवियों ने अपनी कृतियों की रचना की। क्या उनकी रचनाएँ गाई जाती थीं? उनकी रचनाओं का विषय क्या था?